Water conservation measures in Sanskrit literature

Dr. Archana Kumari
Assistant Professor Government College, Boand Kalan, Bhiwani (Haryana)

संस्कृत साहित्य में जल संरक्षण के उपाय

डा. अर्चना कुमारी[1]

प्रकृति और पर्यावरण से हमारा जन्म-जन्मातर का साथ है, जिनकी गोद में हम पैदा होते है, पलते है, भाँति-भाँति के क्रिया कलाप करते हैं। व्यक्ति का सम्यक् विकास उसके अच्छे पर्यावरण में ही संभव है। अच्छे प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण का अनुकूल प्रभाव मनुष्य के स्वरूप, उसकी शारीरिक क्षमताओं, बुद्धि-बल और चिन्तन के विकास आदि पर परिलक्षित होता है। इसने हमारे प्राचीन भारत के आर्थिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति को मजबूत आधार प्रदान किया है। यहाँ के निवासियों ने सात्विक पर्यावरण में रहकर जीवन के सभी क्षेत्रों में जो उपलब्धियाँ हासिल की थी, उन पर हम आज भी गौरवान्वित होते हैं। हमारे वैदिक वाङ्मय का विकास शुद्ध प्राकृतिक पर्यावरण के बीच हुआ है। वेद केवल भारत ही नहीं वरन् समस्त विश्व की अमूल्य निधि हैं। वेदों में जल संरक्षण एवं पर्यावरण-संवेदना के जो तत्त्व विद्यमान हैं, वे मानव सहित संसार के समस्त प्राणियों के लिए हितकारक हैं। जल संरक्षण एवं पर्यावरण-संवेदना का जो तथ्य पाश्चात्य सभ्यता को बीसवीं शती के उत्तरार्ध्द में समझ में आया है, वह भारतीय मनीषा को वेदों के आविर्भाव काल में ही अनुभूत कर हो चुका था। वैदिक ऋषियों को इस तथ्य का पूर्णतः ज्ञान था कि यदि इन पंचतत्वों में से एक भी दूषित हो गया तो उसका दुष्प्रभाव मानव जीवन पर पड़ना अवश्यम्भावी है क्योंकि पृथ्वी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष तथा वायु इन पंचतत्वों से ही मानव शरीर निर्मित है।[2] क्रान्तदर्शी ऋषियों ने वेदों के माध्यम से लोगों से प्रकृति के समस्त अंगों के प्रति संवेदनशील रहने की शपथ दिलाने का प्रावधान किया, जो आज भी शान्ति पाठ के नाम से यथावत् रूप से भारतीय समाज में प्रचलित है।[3]

अतः इस क्रम में ऋषियों द्वारा प्रवाचित वेदों में जल संरक्षण एवं पर्यावरण-संवेदना विषयक जो तथ्य मेरे द्वारा अन्वेषित किये गए हैं, वही इस लेख का वर्ण्य विषय हैं।

किसी भी सामाजिक वातावरण के पल्लवन हेतु जल संरक्षण की अपरिहार्य आवश्यकता है क्योंकि जीव-जन्तुओं हेतु अनुकूल परिस्थितियों में ही जीव-जन्तुओं का समाज पुष्पित-पल्लवित होता है। अत: सामाजिक विकास में जल संरक्षण एवं पर्यावरण-संवेदना की अनिवार्यता को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वेद में जल की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि जिससे बढ़ने वाली वनस्पतियाँ आदि अपना जीवन प्राप्त करती हैं, वह जीवन का सत्त्व पृथ्वी पर नहीं है और न द्युलोक में है, अपितु अन्तरिक्ष में है तथा अन्तरिक्ष में संचार करने वाले मेघमण्डल में तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है। जिन मेघों में सूर्य दिखाई देता हो, जिनमें विद्युत रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूप से दिखाई देती हो, वह जल ही हमें शुद्धता, शान्ति और आरोग्य दे सकता है, जिसे विज्ञान भी स्वीकार करता है।[4] जल की महत्ता एवं उपयोगिता का महिमामंडन वेदों में अत्यधिक हुआ है। वेदों में कहा गया है कि अग्नि (यज्ञाग्नि) से

---

[1]. असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजकीय महाविद्यालय बौन्द कलाँ, भिवानी (हरियाणा)

[2] .यजुर्वेद 23.52

[3]. यजुर्वेद 36.17

[4]. अथर्ववेद 1.33.01

धूम उत्पन्न होता है, धूम से बादल बनते हैं और बादलों से वर्षा होती है।[5] वेदों में यज्ञ का अर्थ 'प्राकृतिक चक्र को सन्तुलित करने की प्रक्रिया' कहा गया है।[6] शतपथ ब्राह्मण में इसे अमृत कहा गया है।[7] वैदिक ऋषि जल के औषधीय स्वरूप से भी भली-भाँति परिचित थे, सम्भवत: इसी कारण उन्होंने जल को '**शिवतम रस**' की संज्ञा दी थी।[8] ऋग्वेद का ऋषि प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे सृष्टि में विद्यमान जल ! तुम हमारे शरीर के लिए औषधि का कार्य करो ताकि हम नीरोग रहकर चिर काल तक सूर्य का दर्शन करते रहें, अर्थात् दीर्घायु हों।[9] यजुर्वैदिक ऋषि **शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शन्योरभिस्त्रवन्तु न:**[10] कहकर शुद्ध जल के प्रवाहित होने की कामना करता है। इस क्रम में अथर्ववेद में पृथिवी पर शुद्ध पेय जल के सर्वदा उपलब्ध रहने की ईश्वर से की गयी कामना उल्लेखनीय है-

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो न: सेदुरप्रिये तं नि दध्म:।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि॥[11]

ध्यातव्य है कि भारतीय मनीषा की दृष्टि में जलस्त्रोत केवल निर्जीव जलाशय मात्र नहीं रहे हैं अपितु वरुण देव अथवा विभिन्न नदियों के रूप में उसने उसे देवत्व के स्थान पर प्रतिष्ठित किया है।[12]

वेदों में दो प्रकार के पर्यावरण को शुद्ध रखने पर बल दिया गया है – आन्तरिक एवं बाह्य। सभी स्थूल वस्तुऐं बाह्य एवं शरीर के अन्दर व्याप्त सूक्ष्म तत्व जैसे मन एवं आत्मा आन्तरिक पर्यावरण का हिस्सा है। आधुनिक पर्यावरण विज्ञान केवल बाह्य पर्यावरण शुद्धि पर केन्द्रित है। वेद आन्तरिक पर्यावरण जैसे मन एवं आत्मा की शुद्धि से पर्यावरण की अवधारणा को स्पष्ट करता है।बाह्य पर्यावरण प्राकृतिक के विचलित होने का दूसरा कारण है जो धरती पर जीवित प्राणी, वनस्पति, जीव-जंतु के संतुलन से जुड़ा है। वेद के अनुसार ब्रह्माण्ड का निर्माण पाँच तत्वों पृथ्वी, वायु, आकाश, जल एवं अग्नि को मिलाकर हुआ है।[13] इन्हीं पाँच तत्वों के संतुलन का ध्यान वेदों में रखा गया है। इन तत्वों में किसी भी प्रकार के असंतुलन का परिणमा ही सूनामी, भूकम्प, भूस्खल, ग्लोबल वार्मिंग, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदायें हैं। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की इच्छा ही पर्यावरणीय संवेदना को जन्म देती है ,अतः सम्पूर्ण वेद जीव एवं प्रकृति के सह-अस्तित्व एवं अन्योन्याश्रित सम्बन्ध पर जोर देता है। वर्तमान समय में जल प्रदूषण से उत्पन्न बीमारियां किसी नरक से कम नहीं हैं। हमारी सभ्यता नदियों को नाली एवं गन्दगी द्वारा प्रदूषित करने की नहीं रही है, परन्तु आज हमारी नदियां नाम मात्र के लिए पवित्र रह गयी हैं। अतः वेदों का सन्देश समझने की नितान्त आवश्यकता आज के समाज को है।

वेदों में पृथ्वी तत्व को माता कहकर सम्मानित करते हुए कहा गया है कि द्यौ)आकाश) मेरे पिता हैं, बन्धु वातावरण मेरी नाभि है और यह महान् पृथ्वी मेरी माता है।[14] ऋग्वेद में आकाश व पृथ्वी की पिता एवं माता के रूप में स्तुति करते हुए सभी प्राणियों की रक्षा की कामना की गई है।[15] अथर्ववेद के भूमिसूक्त में भी पृथ्वी माता के रूप में पूजनीय है।[16] ऋग्वेद में वनस्पतियों से पूर्ण वनदेवी की पूजा करते हुए कहा गया है कि *-अब मैं वनदेवी (आरण्ययी) की पूजा*

---

[5]. शतपथ ब्राह्मण 05.03.05.17
[6] .ऋग्वेद 10.90.06, 01.164.51 तथा यजुर्वेद 31.04
[7]. शतपथ ब्राह्मण 01.09.03.07
[8]. यजुर्वेद 32.13
[9]. ऋग्वेद 01.23.21
[10]. यजुर्वेद 32.12
[11]. अथर्ववेद 12.01.30
[12]. ऋग्वेद 10.75.06
[13]. ऐतरेयोपनिषद् 3.3
[14]. ऋग्वेद 01.164.33
[15]. ऋग्वेद 01.160.02
[16]. अथर्ववेद 12.1.12

करता हूँ जो कि मधुर सुगन्ध से परिपूर्ण है और सभी वनस्पतियों की माँ है और बिना परिश्रम किये हुए भोजन का भण्डार है।[17]

ऋग्वेद के औषधि सूक्त में वनस्पति को माँ कहकर वानस्पतिक औषधि के महत्व को स्वीकारते हुए बहुत सुन्दर संवेदना अभिव्यक्त की गयी है और कहा गया है कि *-हे माँ ! हजारों तुम्हारे जन्म स्थान हैं और हजारों तुम्हारे प्रकार हैं। नाना प्रकार की तुम्हारी शक्तियाँ हैं। मेरे इस रोगी को रोग से मुक्त करो –*

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमत वो रूहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत।[18]

ऋग्वेद में ही पवित्र घास को मनुष्य के दोहन से बचाने का निर्देश दिया गया है।[19] अगली पीढ़ी की सम्पत्ति इसी वनस्पति एवं पानी को कहा गया है।[20] इस प्रकार वेद वनों को विनाश से बचाने का निर्देश देता है।[21] यजुर्वेद प्रार्थना करता है कि *मैं पृथ्वी सम्पदा को हानि न पहुँचाऊँ।*[22] शुक्ल यजुर्वेद प्रकृति के प्रति मनुष्य के सार्वकालिक आदर्श दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है, जिसमें द्यु, पृथिवी, अन्तरिक्ष, जल, औषधियों, वनस्पतियों को संतुलित, संतृप्त एवं शान्त करने की प्रार्थना है।[23] वैदिक ऋषि कहीं पृथिवी के साथ जल तथा औषधि तत्त्व को भी मातृवत् मानता है [24] तो कहीं मित्रवत्।[25] ऋग्वेद में वनस्पतियों को लगाकर वन्य क्षेत्र को बढ़ाने की बात कही गयी है।[26] सम्भवत: इसी कारण से उन्होंने वन्य क्षेत्र को '*अरण्य*' अर्थात् रण से मुक्त या शान्ति क्षेत्र घोषित किया होगा, ताकि वनस्पतियों को युद्ध की विभीषिका से नष्ट होने से बचाया जा सके।[27] वेद जड-चेतन सभी तत्त्वों के प्रति अपनी गहन संवेदना अभिव्यक्त करते हुए सभी के कल्याण की कामना करता है –

शिवो भव प्रजाभ्य: मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः।
मा द्यावापृथिवी अभिशोचीः मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन्।।[28]

प्राकृतिक स्रोतों के अतिरिक्त कृत्रिम स्रोत औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण यह समस्या आज विकराल होती जा रही है। उद्योग-धंधे और मशीनें, स्थल तथा वायु परिवहन के सघन, तीव्र ध्वनि वाले मनोरंजन एवं सामाजिक क्रियाकलापों को अनुशासित एवं नियंत्रित करना आवश्यक है, तभी पर्यावरण को स्वस्थ और पुष्टिकारक बनाया जा सकता है। प्रदूषण से मुक्ति के लिए वेदों में दी विधा, यज्ञ आदि को बढ़ावा देकर भी पर्यावरण के विनाश को रोका जा सकता है। पारस्परिक साहचर्य का यह शाश्वत भाव पैदा करना ही पर्यावरण-संवेदना को दिशा दे सकता है।

प्राकृतिक उपादानों का विनाश मनुष्य मात्र के विनाश का कारण बन रहा है और इस षडयन्त्र का पुरोधा भी स्वयं मनुष्य ही है। वेदों द्वारा जल संरक्षण एवं पर्यावरण-संवेदना के उक्त तथ्यों को प्रकट करते हुए सूर्य, चन्द्रमा, बादल, नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, वनस्पतिया, पशु-पक्षी आदि समस्त उपादानों को ईश्वर प्रदत्त बताने का यही उद्देश्य है कि मनुष्य उन सब से नैतिक रूप से जुड़ा रहे तथा इनके संरक्षण को वह अपना नैतिक कर्तव्य और धर्म समझे किंतु आज मनुष्य

---

[17]. ऋग्वेद 10.146.6
[18]. ऋग्वेद 10.97.2
[19]. ऋग्वेद 7.75.8
[20]. ऋग्वेद 7.70.4
[21]. ऋग्वेद 8.1.13
[22]. यजुर्वेद 10.23
[23]. यजुर्वेद 36.17
[24]. यजुर्वेद 12.76
[25]. यजुर्वेद 06.22
[26]. ऋग्वेद 10.101.11
[27]. यजुर्वेद 28.10
[28]. यजुर्वेद 11.45

भोगवादी जीवन शैली का इतना आदि और स्वार्थी हो गया है कि अपने जीवन के मूल आधार समस्त पर्यावरण को दूषित कर रहा है, नैतिकता, धर्म, कर्तव्य सब भूल रहा है। अतः आज मनुष्य को वेदों का अनुशीलन करते हुए उनके द्वारा प्रदत्त जल संरक्षण एवं पर्यावरण-संवेदना की प्रेरणा को आत्मसात करने की नितान्त आवश्यकता है।